प्रेम तथा विवाह में राम का आदर्श एवं कृष्ण का धर्म

राधा, रुक्मिणी, शैव्या, सत्यभामा एवं रोहिणी – कृष्ण की इन पाँच पत्नियों को कृष्णकथा का अभिन्न अंग माना जाता है। कुछ लोग राधा को कृष्ण की पत्नी नहीं मानते पर इसमें कोई संदेह नहीं कि कृष्णकथा राधा के बिना अधूरी है। सच तो यह है कि राधा से लेकर रोहिणी तक प्रत्येक स्त्री ने कृष्ण के व्यक्तित्व को एक नया आयाम प्रदान कर पूर्णता की ओर अग्रसर किया। कृष्ण ने राम की तरह एकपत्नीव्रत धारण नहीं किया था। एकपत्नीव्रत के कारण राम को आदर्श मर्यादा पुरुषोत्तम माना गया। कृष्ण आदर्श नहीं हैं परन्तु आराध्य अवश्य हैं और अनैतिक अपराधी तो बिल्कुल नहीं हैं।

धर्म के रक्षक कृष्ण के लिए अनैतिक व अपराधी जैसे शब्दों के प्रयोग की संभावना का संकेतमात्र ही मूर्खतापूर्ण प्रतीत होता है। पर सच यह है कि वर्तमान भारतीय कानूनों के अनुसार गणेश से कृष्ण तक अनेक हिन्दू देवता एवं अवतार गंभीर अपराधी की श्रेणी में आते हैं। यदि कोई न्यायालय चाहे तो इन सभी को सात वर्ष के सश्रम कारावास की सजा सुना सकता है। देव चाहें तो किसी आधुनिक चतुर वकील से मिल कर अपना बचाव कर सकते हैं।

वकील की सलाह के अनुसार गणेश न्यायालय में शपथपत्र दे सकते हैं कि उनका रिद्धि से वैध विवाह हुआ है और सिद्धि उनकी प्रेमिका तो है पत्नी नहीं। कुछ इसी प्रकार कृष्ण भी घोषणा कर सकते हैं कि एक को छोड़ बाकी सब उनकी पत्नियाँ नहीं मात्र साथ रहने वाली स्त्रियाँ हैं। भारतीय कानूनों के अनुसार कोई पुरुष यदि एक पत्नी के जीवनकाल में दूसरा विवाह करे तो यह दण्डनीय अपराध है। पर एक विवाहित पुरुष चाहे जितनी रखैलें रख सकता है, चाहे जितनी स्त्रियों को प्रेमिका का दर्जा दे सकता है तथा चाहे जितनी वेश्याओं के साथ रातें रंगीन कर सकता है। कानून की नजर में यह सब अपराध नहीं है। कानून की दष्टि में रखैल रखना अपराध नहीं है, रखैल से शादी करना अपराध है।

भारतीय विधिनिर्माताओं ने विवाह को पश्चिमी दृष्टिकोण से देख कर पश्चिम की नैतिकता को आँख मूँद कर अपना लिया। भारतीय परंपरा के अनुसार पुरुष एवं स्त्री जब तन–मन–आत्मा से एक दूसरे के हो जाते हैं तो विवाह हो जाता है। विवाह के संदर्भ में रस्मो–रिवाज को गौण माना गया। दुष्यंत का शकुंतला से जब वाटिका में विवाह हुआ था तो वहाँ न तो कोई पंडित था, न अग्नि थी और न ही फेरे हुए थे, फिर भी वह एक वैध विवाह था क्योंकि दोनों ने एक–दूसरे को स्वीकार कर लिया था। यह कहा जा सकता है कि वेश्यागमन को छोड़ आपसी सहमति से किया गया संभोग विवाह माना गया। इसके ठीक विपरीत पश्चिमी देशों में संभोग को पाप–कर्म माना गया। चर्च अथवा राज्यसत्ता इस पाप–कर्म हेतु अनुमति देते थे जिसे विवाह कहा जाता था। संक्षेप में कहा जा सकता है कि हिन्दू धर्म के अनुसार विवाह तन–मन–आत्मा का एकीकरण है, इस्लाम में एक संविदा (कान्ट्रैक्ट) है तथा ईसाई धर्म में चर्च द्वारा प्रदत्त लाइसेंस है।

यह सर्वविदित है कि लाइसेंस–कोटा–परमिट राज आर्थिक क्षेत्र में असफल रहा। यौन संबंधों के क्षेत्र में तो लाइसेंसराज उससे से भी अधिक असफल रहा। यूरोप एवं अमेरिका में उन्मुक्त यौन आंदोलन की

© All Rights Free

आँधी वास्तव में इस लाइसेंसराज के विरुद्ध उपजा आक्रोश था। आज भी पश्चिम में जब विवाह के अस्तित्व तथा औचित्य पर प्रश्न उठाये जाते हैं तो ये विवाह के लाइसेंसनुमा स्वरूप के विरुद्ध उठते सवाल होते हैं। पश्चिम में बिना विवाह किये साथ रहने की जो बातें सुनायी देती हैं, वे भी वास्तव में उस शिकंजे के विरुद्ध विद्रोह होता है जिससे पश्चिमी समाज को सदियों तक जकड़ा गया है।

यूरोप में मध्यकालीन अंध युग में जब चर्च का सर्वत्र बोलबाला था, एक दोहरी मानसिकता ने जन्म लिया था। एक ओर तो चर्च का लौह शिकंजा नैतिकता थी जिसमें बिना पादरी की अनुमति के किया गया प्रेम फाँसी के तख्ते तक पहुँचाने के लिए पर्याप्त था तथा दूसरी ओर पुरुषों (विशेषकर अभिजात्य वर्ग) को प्राप्त स्वछंदता थी। विवाहित स्त्री को पति की संपत्ति माना जाता था और उसकी स्थिति एक गुलाम से बेहतर नहीं थी। अपने मालिक की सहमति से यह गुलाम किसी अन्य पुरुष से संभोग कर सकती थी। बिना सहमति के करने पर वह अन्य पुरुष दण्ड का पात्र होता था, स्त्री नहीं, क्योंकि गुलाम एक जानवर के समान माना जाता था और पशुओं को दण्ड नहीं दिया जाता। सहमति लेने का कोई प्रतिबंध विवाहित पुरुष पर नहीं था। पुरुष चाहे विवाहित हो या अविवाहित, पूर्णतः स्वतंत्र होता था। १८६० में जब अंग्रेजों ने भारतीय दण्ड संहिता की रचना की तो उन्होंने इन्हीं दोहरे नैतिक मूल्यों को भारतीय समाज पर थोप दिया। संहिता की धारा ४९७ विवाहेतर संबंधों के क्षेत्र में मध्युगीन यूरोपीय अवधारणाओं को आज भी भारत में कानूनी स्वरूप प्रदान कर रही है।

यूरोप की दोहरी मानसिकता जिसमें एक ओर तो एक से अधिक विवाह पूर्णतः वर्जित था तथा दूसरी ओर पुरुष को यौन संबंधों में पूरी छूट थी, के कारण यूरोपीय समाज में अनेक विकृतियाँ आई। वेश्यावत्ति तथा रखैल या मिस्ट्रेस रखने का प्रचलन, दो प्रमुख विकृतियाँ थीं। पिछली शताब्दी में चर्च का लाइसेंसराज कमजोर हुआ, तलाक एवं गर्भपात आसान हुए, जिसके फलस्वरूप फ्री सेक्स की नयी विकृति ने जन्म लिया।

यूरोपीय यौन नैतिकता के साथ ही उससे उपजने वाली विकृतियों ने भी भारत में अपना स्थान बनाया है। भारत में यौन संबंधों में यूरोपीय नैतिक मापदण्डों की स्थापना का अंतिम चरण १९५५ में हिन्दू विवाह अधिनियम के लागू होने पर पूर्ण हुआ था। पिछले साढ़े चार दशकों में पूरे देश में बलात्कारों में अभूतपूर्व वद्धि हुई। विवाहेतर संबंधों ने समस्त भूतपूर्व सीमाएँ तोड़ दीं। वेश्याओं की संख्या में दिन दूनी रात चौगुनी वद्धि हुई।

एक मोटे अनुमान के अनुसार मुंबई शहर में लगभग दो लाख पूर्णकालिक वेश्याएँ हैं। यदि अंशकालिकों की संख्या जोड़ ली जाए तो कुछ लोगों के अनुसार मुंबई में लगभग पाँच लाख वेश्याएँ हैं। इन के ग्राहकों की संख्या का अनुमान लगाना अत्यन्त कठिन है। आँकड़ों की थोड़ी सी बाजीगरी से यह अंदाजा लगाना कठिन नहीं है कि संभवतः मुंबई एवं उसके उपनगरों में रहने वाले प्रत्येक दो वयस्क पुरुषों में से एक ने जीवन में कम–से–कम एक बार वेश्यासंसर्ग का सुख भोगा है। विश्वसनीय आंकड़ों के अभाव में कुछ भी बहुत जोर लगाकर कहना संभव नहीं है। पर यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि वेश्यावृत्ति मुंबई के समाज में बहुत गहरे पैठ कर चुकी है।

समस्या केवल मुंबई की नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि पूरा देश अतृप्त यौन इच्छाओं के धधकते ज्वालामुखी पर बैठा है, जो अंदर ही अंदर हमारे पूरे समाज को खोखला कर रहा है। इस विस्फोटक

स्थिति के कई लक्षण स्पष्ट दिखाई देते हैं। फिल्मों में बढ़ता सेक्स, नंगापन तथा अश्लीलता समाज की यौन अतृप्ता का परिचायक है। राजनीतिज्ञों एवं अधिकारियों के सेक्स स्कैंडल जो कि नियमित रूप से देश के विभिन्न भागों में सुर्खियाँ बनाते रहते हैं, भी समाज में फैली गंभीर स्थिति की ओर संकेत करते हैं। अभी हाल में तहलका द्वारा सैन्य अधिकारियों को प्रसन्न करने के लिए कालगर्ल के उपयोग के समाचार से इस राष्ट्रीय बीमारी की व्यापकता एवं भयावहता का पता लगता है।

दुःख की बात यह है कि समाज की जड़ों को खोखला करने वाली इस समस्या को न तो एक राष्ट्रीय एवं सामाजिक बीमारी के रूप मे लिया जा रहा है, न ही एक धधकते ज्वालामुखी के रूप में और न ही यह समझा जा रहा है कि यह समस्या पिछले पाँच दशकों में बेतहाशा बढ़ी है। इस समस्या को देखने के तीन प्रमुख दृष्टिकोण हैं। पहला नजरिया नैतिकतावादियों का है, जो इस समस्या को गिरते नैतिक स्तर से जोड़ते हैं। फिल्मों पर कड़े सेंसरशिप, ब्लू फिल्मों एवं अश्लील साहित्य पर रोक, शिक्षा में नैतिकता इत्यादि की माँग करने वाले नैतिकतावादियों और मध्ययुगीन चर्च के विचारों में बहुत समानता है। दूसरा दृष्टिकोण दण्डवादी है जिसके अनुसार यह माना जाता है कि यदि पुलिस की संख्या में पर्याप्त वृद्धि कर दी जाए और पुलिस सही ढंग से काम करे तो यौन अपराधों पर समुचित नियंत्रण पाया जा सकता है। तीसरा देखने का तरीका राजनैतिक है, जिसमें प्रत्येक सेक्स स्कैंडल चटखारे लेने तथा विरोधी पर आक्रमण करने का महाअवसर होता है। प्रफुल्ल महंत के दूसरे विवाह की खबर उड़ती है तो कॉंग्रेस खुश हो जाती है और जलगाँव स्कैंडल पर कुछ अन्य दल।

नैतिकतावादी, दण्डवादी तथा राजनैतिक निंदक – इन तीनों की अपनी सामाजिक उपयोगिता है। पर यह स्पष्ट है कि समाज के पूरे ढाँचे को कमजोर कर रही तथा हमारी राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए खतरा बन रही इस राष्ट्रीय समस्या को इन तीनों के सम्मिलित प्रयासों से भी हल नहीं किया जा सकता। इस रोग की जड़ वह यूरोपीय यौन नैतिकता है जिसे हमारे विधि निर्माताओं ने हम पर कानूनी रूप से थोपा है।

यूरोपीय यौन नैतिकता से उभरी विकृतियाँ भारत में पिछले पाँच दशकों में लगातार बढ़ती जा रही हैं। अब यह आवश्यक हो गया है कि हम पुरुष–स्त्री सम्बन्धों को प्रभावित करने वाले सभी कानूनों पर गहराई से एवं नये सिरे से विचार करें। भारतीय परम्परा में बहुपत्नी एवं बहुपति दोनों के उदाहरण मिलते हैं। कृष्ण एवं द्रौपदी दोनों को सम्मान की दष्टि से देखा जाता है, यद्यपि दोनों में से कोई भी आदर्श नहीं है।

आदर्श या अपराधी, सफेद या काला, अच्छा या बुरा, शून्य या एक – पारम्परिक यूरोपीय दर्शन जीवन को सदा दो विपरीत ध्रुवों के बीच एक का चुनाव करने की दष्टि से देखता है। इस बहुरंगी दुनिया को श्वेत–श्याम की वर्णभाषा में नहीं समझा जा सकता। भारतीय दर्शन ने मनुष्य के बहुआयामी स्वरूप को पहचाना तथा इस प्रकार की विभाजन रेखाएँ खींचनें में संकोच का परिचय दिया। आदर्श मर्यादा पुरुषोत्तम तथा दण्डयोग्य अपराधी के मध्य में एक पूरा संसार है, जिसमें हम सब शामिल हैं। हममें से बहुत कम मर्यादा पुरुषोत्तम के आदर्श की उच्चता को प्राप्त कर सकते हैं, पर इसका अर्थ यह नहीं कि हम सब अपराधी हैं। भारतीय नीतिज्ञों ने एकपत्नीव्रत को आदर्श माना परन्तु बहुपत्नी या बहुपति को भी स्वीकार्य माना तथा इस संबंध में निर्णय करने के लिए व्यक्ति को स्वतंत्रता प्रदान की। भारतीय मनीषियों ने यौन संबंधों में दायित्वबोध को महत्त्व दिया और उन्मुक्तता को पूरी तरह नकार दिया।

स्त्री–पुरुष संबंधों में राज्यसत्ता, विद्वतजन तथा समाज को एक ही भूमिका प्रदान की गयी – दायित्वपालन के लिए बाध्य करने की। हिन्दू समाज में प्रेम के लिए समाज की अनुमति की अनिवार्यता कदापि नहीं रही, परन्तु प्रेम करने के पश्चात जीवन भर साथ निभाना आवश्यक माना गया।

हिन्दू धर्म में कृष्ण प्रेममयी ईश्वर की प्रतिमूर्ति हैं। कृष्ण से जिसने भी प्रेम किया, कृष्ण ने उससे प्रेम किया और फिर उस प्रेम को आजीवन निभाया। यह राम के एकपत्नीव्रत के आदर्श से भिन्न है पर यह भी एक धर्म है। धर्म के रक्षक कृष्ण यदि रुक्मिणी, शैव्या, सत्यभामा एवं रोहिणी के प्रेम का उत्तर एक दायित्वविहीन खोखले प्रेम से देते तो वह संभवतः एकपत्नीव्रत के आदर्श का पालन तो कर लेते पर ऐसा कर वे अधर्मपूर्ण कार्य करते। आदर्श एवं धर्म के बीच का यह विरोधाभास एवं द्वंद्व भारतीय परंपरा को समृद्ध बनाता है। कैसी विडम्बना है कि इस समृद्ध, समग्र परम्परा को नकार हमारे विधिनिर्माताओं ने एक ऐसी परम्परा को देश पर थोप दिया है जिससे पूरा समाज विकृत होने लगा है।

अनिल चावला

२५ अगस्त, २००१